अध्याय छः

संजीव के उपन्यासों में विस्थापन से उत्पन्न धार्मिक और सांस्कृतिक संकट

६.१ धर्म का संकट

धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास में फँसाकर सर्वहारा समाज को प्रथम गुमराह किया जाता है फिर उसका शोषण किया जाता है। शगुन-अपशगुन, टोने-टोटके में उलझाकर इन्हें लूटा जाता है। धार्मिक पाखंडी अक्सर घोड़े की नाल, बंदर की हड्डी, बिल्ली की खेड़ी का आधार लेकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। गाँव की धार्मिक अधिशत्ता भूत-प्रेत आज का हौवा खड़ा करके अपने मंत्र-तंत्र शक्ति में सर्वहारा समाज के मुक्ति का ढोंग करते हैं। आदिवासी के अनपढ़ और अंधविश्वासी होने के कारण इनके दिलो-दिमाग पर अरण्य मुखी संस्कृति का भूत सवार रहता है। डायन जैसी बर्बर प्रथा के चलते वे बहशी बनकर नारी की हत्या तक करते हैं। योजनाओं के चंगुल में फँसकर वह निर्धन बनते जा रहे हैं। मुंडन-छेदन से लेकर जादू-टोने तक के लिए सर्वहारा समाज से मनमाना पैसा वसूला जाता है। पंडित पुजारी, पूजा करते-करते नारियों पर जाल बिछाते हैं। थारू आदिवासी गाय का दूध नहीं पीते। कहते हैं लेरू की आत्मा कलपती है। सर्पदंश से अगर व्यक्ति मर जाता है तो वे उसकी लाश को केले के तने पर बांधकर पानी में बहा देते हैं। उनकी

अंधमान्यता है कि पानी विष सोख लेता है। उनका विश्वास अस्पताल पर नहीं है। कुछ पिछड़े अंचल के गाँव भूतैले साये से लिप्त हैं। संजीव विज्ञान के छात्र होने के कारण अवैज्ञानिक, मनगढ़ंत, अंधमान्यताओं पर अंधविश्वास दर्शाते हैं। उन्होंने अपने अनुभवों से यह जाना कि अंधविश्वास तो शोषकों का शस्त्र है। जिससे सर्वहारा समाज की बलि चढ़ाई जाती है। परिणामतः वे अपने उपन्यासों में धार्मिक पाखंड और अंधश्रद्धा का पर्दाफाश करते दिखाई देते हैं।

'किसनगढ़ की अहेरी' उपन्यास में धार्मिक पाखंड के चलते सर्वहारा समाज और नारी का शोषण किया जाता है। राधा का कच्ची उम्र में ही विवाह हो जाता है और फिर नियति उसे विधवा बनाती है। धार्मिक पाखंड के निर्वाह हेतु उसका मुंडन किया जाता है। उसके मुक्तजीवन को वैधव्य ने प्रतिबंधित किया है। उसकी वैधव्य की दशा को कथा वाचक बयान करते हैं- 'अब कजरी बाग के बल्लु पंसारी और राघव पनेड़ी के यहाँ उनमुक्त कहकहों पर साँप लोटेगा मनचलों की छाती पर। गुलाबी और बसंती आंचल के फूल नहीं खिलेंगे खाटी पगडंडियों पर। उन्मुक्त बिहारिणी तितली के पर नोच दिए गए हैं। अब श्वेत परिधान में नजर झुकाकर, अपशगुन के भय से शुभ मुहूर्त में अपनी छाया से बचती चलेगी राधा।' धार्मिक पाखंड को राधा पर जबर्दस्ती थोपा गया था। जैसे उसने स्वयं पति की हत्या की हो? पति तो चला गया पर राधा के हिस्से

जीते-जी नर्क यातनाएं आ गई हैं। राधा के दूसरे विवाह को धर्म में मान्यता नहीं है। राधा को रसोई घर में निर्वस्त्र रहना पड़ता है। अंधेरी कोठरी के समान कमरे में वह हरदम बंद रहती थी। बगैर ब्लाउज के राधा को जूठे बर्तन का झूठा बैलों के नाद में डालने आना पड़ता था। खड़ाऊ पहनकर राधा काम करती। ब्रह्मचारी जी देवताओं के व्यभिचारयुक्त करतूतों को याद करते हैं। ब्राह्मण ने खुद अपनी कन्या सरस्वती से----------विष्णु ने, शिव ने----------फिर स्वयं भी उन्हीं धर्म की आड़ लेकर अपनी भागिनी राधा को भोगते हैं।

किसनगढ़ में अन्य धार्मिक मान्यताएँ प्रचलित हैं। पुराणों के हवाले लेकर ये धर्म का पाखंड फैलाते हैं। जिसे चंद्रलोक चाहिए उसने अपनी रूपसी कन्या को वस्त्राभूषण पहनाकर ब्राह्मण को दान करना चाहिए। इस पाखंडी परंपरा के द्वारा वधू पक्ष को लूटा जाता था। किसनगढ़ में धर्मशास्त्र का अक्सर हवाला दिया जाता है- 'सोलह साल की रूपसी कन्या को सुंदर वस्त्र आभूषणों से सजाकर जो ब्राह्मण को दान देता है उसे चंद्रलोक मिलता है।' धर्म की आड़ में ब्राह्मण अनपढ़ जनता का शोषण करते हैं। ज्योतिषी बाबा अंधविश्वास का जाल बिछाकर दोख उतरवाने के लिए कितनी सर्वहारा समाज की नारियों को झोंटा खोलकर मदारी की तरह नचाते हैं। एक दिन तो उन्होंने सोना को पशुशाला में हाथ की रेखा देखने के लिए पकड़ा था। और सोना को बेवकूफ बनाते हुए

वे कहते हैं- 'तेरे हाथ की रेखा बताय रही है कि तै एक जन्म में ऊंची जाति की होती रही, मुदा करम फल------। हाथ की रेखा, जन्म और कर्म का हवाला देकर नारी का शोषण करना उनका धंधा बन गया था।

सर्वहारा समाज के राधा का दृष्टिकोण अन्याय-अत्याचार के चलते पापभीरू बन गया है। एक दिन सोना को ज्योतिषी बाबा जबरजस्ती हथिया लेते हैं। अब उनके चंगुल से सोना की मुक्ति तो असंभव है और राजा में इतनी शक्ति कहाँ की पत्नी की मुक्ति कराए इसलिए रूप वह असहाय धार्मिक पापबोध से दैववादी बन जाता है स्वागत् कथन में राजा का दैववादी रूप झलकता है- "जाई दो-----सौवे दो ससुरी को! हमारा तुम्हारा नियाव ऊपर होगा। ज्योतिषी का क्या है, बाभन है, वहाँ भी बच जाएगें, मुद्रा तुम------?" धर्म ने तो ब्राह्मणों को हर पाप करने का लाइसेंस दिया है। ऐसी अज्ञानवश अंधधार्मिक मान्यताएँ सर्वहारा समाज को शोषण का तार्किक आधार रचने के लिए बनाई गई हैं। जिससे वह हर पाप को भगवान पर छोड़ते हैं।

लुंपेन सर्वहारा भी लोगों को अंधविश्वासी बनाकर लूटने में माहिर हैं जैसे मटरु!---- "साही के कांटे खरभान के घर की नींव में गाड़कर उसकी मरती हुई संततियों में डूबते वंश को बचाया तो मुर्दे की हड्डी को नींव में गाड़ कर कितने को निर्वंश किया। साही के कांटे दो घरों में खोदकर उनमें झगड़ा लगवाया------धनवंतरी, सुश्रुत चरक-च्यवन के

बाद उन्होंने नया अध्याय जोड़ा है औषधि विज्ञान में। ऊंट की हड्डी, घोड़े की नाल, बिल्ली की खेड़ी, मछली के जाल की गुरिया, बंदर की हड्डी पता नहीं कितने-कितने साधन हैं उनके पास रोग-शोक की मुक्ति के।" किशनगढ़ के सर्वहारा निरीह जीवों को अंधमान्यताएँ और धार्मिक पाखंड के कारण शोषित किया जा रहा है।

'सर्कस' उपन्यास में मेले में यज्ञ मंडप लगा हुआ है। हवन कुंड में मंत्रोचार के साथ हवन किया जा रहा है। जो कंपनी मजदूरों के बच्चों के लिए स्कूल तक मुहैया नहीं कर सकती उसी ने मोटे-मोटे गार्डरों द्वारा यज्ञशाला बनवाई है। यह नागा संन्यासी नंगे रहते हैं पर उन्हें घृणा नहीं की जाती बल्कि दर्शन किए जाते हैं। एक बच्ची उनकी नग्नता को देखकर उन्हें गंदा कहती है तो माँ उसे तमाचा लगाती है। यह नागा संन्यासी अन्य को छूते नहीं केवल बादाम, केसर और पिस्ता युक्त दूध पीते हैं। कहा जाता है कि इन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई हो इसलिए वे खड़े रहते हैं। यज्ञ मंडप में रामचरितमानस, गीता और वेदों के मंत्रोच्चार में धार्मिक पाखंड युक्त माइक पर घोषणा की जा रही है जूते-चप्पल बाहर निकालकर यज्ञ मंडप में प्रवेश करें। आपका अहोभाग्य कि आपको यज्ञ मंडप की एक सौ आठ बार परिक्रमा करने का पुण्य मिल रहा है। एक सौ आठ बार परिक्रमा करने वाले स्वर्ग के अधिकारी बनेंगे। गिनती के लिए कुछ भाई-बहन पेटिका में चने का कंकड़ डाल रहे हैं। जो सर्वथा गलत है।

परिक्रमा करने वालों से अनुरोध है कि वह सिर्फ सिक्के ही डालें। खुदरे न हो तो यहाँ से ले जाएं। आइए, मोक्ष का द्वार खुला है। पुण्य और मोक्ष का हौव्वा खड़ा करके धार्मिक पाखंड की आड़ में पैसा बटोरा जा रहा है। धर्म की चाबुक से आहत अंधविश्वासी भक्तगण परिक्रमा कर रहे हैं। धर्म के ठेकेदारों को दोहन की कला अच्छी आती है। हर तरह के टैक्स और ऑडिट से छुपाई हुई यही काली कमाई है। पुण्य और मोक्ष के इस खेल में काले धंधे करने वाले की क्षति नहीं होती पर सर्वहारा समाज स्वयं रोजी-रोटी के लिए तरह-तरह के करतब दिखाता है। यह धर्म का खेल उसे बर्बाद करने पर तुला है।

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में चंदनपुर गाँव के सर्वहारा समाज को धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास में नीम-हकीम और ओझा-पीरों ने उलझाया है। चंदनपुर में खदान दुर्घटना हो गई और यहाँ का आदमी अकर्मण्य बनकर कपालिनी मैया पर सब कुछ छोड़ देता है। छेदी की मान्यता है कि जब तक उनके सिर पर कपालनी मैया का हाथ है उसे कोई फिक्र नहीं है। लुंपेन सर्वहारा छेदी कहता है- "कोच्छ नहीं होगा। जब तक हमारे सिर पर कपालिनी मैया की छत्रछाया है, कोच्छ नहीं होगा। जब तक हमारे सिर पर कपालिनी मैया की छत्रछाया है कोच्छ नहीं होने वाला है।" धार्मिक अंध पाखंडियों ने सर्वहारा समाज का

शोषण करने हेतु इन्हें दैववादी बना दिया है। इसलिए वह सब कुछ कपालिनी मैया पर छोड़ देते हैं।

सर्वहारा समाज का सोमारू अपनी पन्द्रह साल की गूंगी बेटी की आवाज सुनने के लिए ओझा, पीरों, हकीमों और नीम हकीमों के बहकावे में आकर दंडवत प्रणाम करते हुए चल रहे थे जिससे पेट, जांघ, घुटने लहू-लुहान हो गए थे- "इस विषम कीचड़-कंकड़, काँटे, कुंज की धरती पर सोमारू चंद कदम चलकर साष्टांग प्रणाम करते हुए लेट जाते, फिर उठते, चंद कदम चलकर फिर वही साष्टांग। दंड प्रणाम करते हुए लेट जाते, फिर उठते, चिबुक, पेट, जांघ और घुटने लहु-लुहान हो रहे हैं।" बगल में चल रही बेटी पिता की इस दयनीय दशा को देखकर दुखी हो रही है। घाट चाहे कितना भी दूर क्यों न हो वह दंड-प्रणाम करते हुए ही वहाँ तक जाएगा और छठ मैया और सूरज भगवान को प्रसन्न करेगा। कुछ पुरुष अपनी मनौतियाँ पूर्ण करने के लिए सिर पर दौरा उठाए चल रहे हैं। सोमारू को बेवकूफ बनाकर व्रत, तीर्थ, उपवास और पूजा कराई गई है।

अंधश्रद्धा ने सर्वहारा समाज को साक्षात् अंधा बनाया है। स्वप्न आदि का गलत अर्थ लगाकर पंडित कन्या तक को दान में लेते हैं। बल्कि माँ-बाप को अपनी संतानों को दान करने के लिए उकसाते हैं। स्वाति को उसके माता-पिता बचपन से मंदिर छोड़ गए थे। यह

स्वाति अंधश्रद्धा की कोपभाजन बनकर कपालकुंडला बनकर कपालिनी देवी को समर्पित हो गई है।

सर्वहारा समाज स्वयं तो अभावों का शिकार है उस पर बलि प्रथा का भूत भी सवार किया जाता है। "काली मंदिर में मैंने जो कुछ देखा वह सजीव हो उठा। वहाँ बलि के समय कबूतरों को दाना चुगाते समय छुरी से काट दिया गया था। आश्चर्य! कटी गर्दन की थोड़ी देर तक दाना चुगती रही, फिर धीरे-धीरे उसकी चौंचे शिथिल हो गई। चौंचे खुली थी। चावल गिर रहा था। उनसे धड़ एक ओर पड़ा था।" धार्मिक अंधमान्यता से ग्रसित सर्वहारा समाज कबूतर की बलि देकर शुभ और लाभ की कामना करता है, जो छलावा मात्र है।

'धार' उपन्यास में शोषक अंधविश्वास, मंत्र, डायन प्रथा आदि धार्मिक और सामाजिक आडंबरों का फायदा उठाकर सौताल आदिवासियों का शोषण करते हैं। शोषकों के शोषण का विरोध करने वाली मैना की माँ को डायन घोषित करके मार भगाया था। हैदर मामा मंगर को मैना की माँ के बारे में बताते हुए कहते हैं- "इसकी माँ कौन थी मालूम?" "कौन" ? "डायन थी डायन। सब गाँव वाला मिलकर मार भगाया, मैना तब बच्चा-ई था।" महेंद्र बाबू तेजाब की फैक्ट्री लगवाता है। जिससे सारा परिवेश विषैला बन जाता है। मैना की माँ उसका विरोध

करती है तो महेंद्र बाबू ओझा को घूस देकर मैना की माँ को डायन घोषित करवाता है। फिर सौताल आदिवासी उसको मार भगाते हैं।

सौताल आदिवासियों का मनगढ़ंत अंधमान्यताओं पर दृढ़ विश्वास है। उनका कहना है कि औरत मर्द को सुग्गा बनाकर रखती है। फिर मर्द पर सारी मर्जी औरत की चलती है। मैना के संदर्भ में हैदर मामा कहते हैं कि मैना मर्द को सुग्गा बनाकर पिंजरे में रखती है- "मैना जादू जानता, आदमी को सुग्गा बना लेता, माने देह आदमी का रहेगा मगर दिमाग सुग्गे का।" सौताल आदिवासियों को जानगुरु ओझा और महेंद्र बाबू गुमराह करते हैं। एक रात फैक्ट्री में टेंगर की हादसे में मृत्यु होती है। जानगुरु ओझा औरतों को लेकर यहाँ तक कहता है कि माया का प्रकोप है। रातों-रात अगर लाश को फिकवा नहीं दिया गया और उसे कबर में दफना दिया तो डायन मर्द का कलेजा खाने आती है। सौताल मैना जब कबर देने की बात करती है तब शोषक कहते है- "कबर------? छी ! छी! धरम भ्रष्ट। अरे लाश की दुर्गति न करो मैना। लाश कब्र में रही तो डायन आती रहेगी कलेजा खाने के लिए। वास्तव में सौतालो में भी जलाने की पद्धति थी पर शोषकों ने सारे आदिवासियों के जंगल चट कर दिए। अब लकड़ी के अभाव में यह खबर की सामाजिक प्रथा को मजबूरन उन्हें अपनाना पड़ी है। वास्तव में असली डायन तो शोषक व्यवस्था है जो जीते जी शोषितों का कलेजा खाती है।

सौताल आदिवासियों को प्रताड़ित करने हेतु सीताराम पंडित, धर्मशास्त्र, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि का हवाला देता है। मैना जब पहले पति फोकल को छोड़कर मंगर के साथ रहने लगती है तब धर्म भ्रष्टता का हौव्वा खड़ा किया जाता है। पति के रहते जो नारी दूसरे पुरुष से संबंध बनाती है उसे नरक का भागी होना पड़ता है। ऐसी औरतों का सौतालों में जीते जी क्रिया कर्म किया जाता है। नरक से स्वर्ग और पाप से पुण्य की अंध मान्यताएं यहाँ शोषक चलाते हैं। पंडित सीताराम कहते हैं- "हिंदू शास्त्र में ई भी लिखा है कि संतान के पाप-पुण्य का फल पितरों को भोगना पड़ता है।" टेंगर ने लपककर उनके पाँव पकड़ लिए।" मगर शास्त्र में ई हो लिखा है कि पराश्चित करने से पितरों को फिर से सरग मिल सकता है। मैना और फोकल फिर से सत्यनारायण बाबा का कथा सुन लें और बामन और बिरादरी को भोज दे दे तो-------। मैना इन पाखंडियों के अंध नियमों को घास नहीं डालती इसलिए उसका जीते जी श्राद्ध किया जाता है।

तेजाब की फैक्ट्री से पानी तेजाब युक्त होने से श्याम की भैंस मर जाती है। महेंद्र बाबू जानगुरु ओझा को दो सौ रुपये देकर भैंस मरने का अपराध मैना की माँ पर मढ़ते हैं। ओझा ने इस शाल के पत्ते में तेल लगा कर मंत्र पढ़कर मैना की माँ के कारण भैंस मर गई- इस बात को साबित किया। सारे गाँव में मैना की माँ को घेरा और भैंस

की कीमत माँगने लगे। जिसमें दो सौ और दो बकरे की माँग होने लगी थी। वह घबराकर भाग गई। पागल कुत्ते की तरह लोग उसका पीछा करते पीटते थे। मैना की माँ गिड़गिड़ायी, हम डायन नहीं, इतना पैसा कहाँ से देगा। पर कोई माना नहीं। ओझा ने अपना फैसला सुनाया- "काल तक पैसा दे, दो, नई तो गाँव छोड़ दो।' और माँ तब से तो गया कि आज तक कोई उसको नई देख सका।"

सौताल अन्य जनजातियों की सभा बुलाई गई। 'कुलटा' मैना का श्राद्ध किया जा रहा था। चबूतरे के पास मैना की एक कल्पित समाधि(कब्र) बनाई गई। कब्र के पास जाति बिरादरी को संबोधित करते हुए हाथ जोड़े पिता और 'विधुर' पति फोकल सौताली भाषा में कहते हैं- "आज तुम हमारी इस दुनिया को छोड़कर देवताओं के लोक में जा रही हो। हमारी प्रार्थना है कि देवता तुझे सुखी रखें।" तो दूसरी ओर मैना पक्षधर मैना का श्राद्ध करने वालों को ही जातिच्युत करते हैं। मैना को पुनर्विवाह की अनुमति मैना की पक्षधर 'लाबीर' देती है। मंगर फोकल को पहले विवाह का खर्च सौ रुपये देना चाहिए। फोकल जातिच्युत हो गया है इसलिए फोकल और मैना के बच्चों पर मैना का है अधिकार माना गया है मैना सबको मत्था टेका। मंगर टिपका और सितवा लेकर देवस्थान की पूजा की। एक तरफ मैना मर रही थी दूसरी और उसका पुनर्जन्म हो रहा था। एक तरफ उसके श्राद्ध को लेकर तीन

दिनों की अशुचि मानी गई तो दूसरी ओर पुनर्जन्म की खुशी में स्त्री-पुरुषों के दल नाच गाने में मस्त थे। भोज भात संपन्न हो गया था। आदिवासी हड़िया (भात की शराब) में सुध-बुध खोकर नाच रहे थे। संजीव ने आदिवासियों की भक्तों के लिए लूपेंन चरित्रों और अंधश्रद्धा को भी जिम्मेदार माना है। लेकिन उसके धनात्मक पक्षों और पाकी जगी का संहृदयता से पक्ष लिया है।

जेलर के बलात्कार की निशानी भोलू बाल अवस्था में ही खदान बैठ जाने से दबकर मर जाता है। उसे कोयले की खदान में ही मैना दफना देती है। बाल मृत्यु पर सौतालों के धार्मिक अंध क्रियाकर्म को देखा जा सकता है जिसमें दो माह तक मृतक बालक के लिए एक कटोरे में खाना अलग दरवाजे पर रखना चाहिए वह बाहर आकर खाना खाता है। कैली क्रिया कर्म के बारे में कहती है- "ऊ बेचारा तो सरग गया देवलोक में। लेकिन अन्न खाने वाला बच्चा था, किरिया करम नई होगा तो का? उसका खातिर दू महीना तक एक कटोरी खाना अलग कर दरवाजे पे रख देना। तोर तो अशौच हो गया, ऊ वहीं से बाहर से बाहर आके खा लेगा।" अनपढ़ सौताल इस अंधविश्वास के शिकार हैं कि खाना खाने लायक बालक अगर मर जाता है तो वह दो महीने तक रोटी खाने दरवाजे पर आता है। उसके लिए अलग से कटोरी में खाना निकाल कर रखना चाहिए।

सौताल आदिवासियों में पुरुष की मृत्यु पर स्वयं के गाँव के साथ ही आसपास के गाँवों को श्राद्ध भोज खिलाने की अंध परंपरा है। एक तो सौताल स्वयं रोजी-रोटी के शिकार हैं ऊपर से यह धार्मिक पाखंड उसे और भी दयनीय अवस्था में लाकर पटकते हैं। ओझा और शोषक धर्मांधता को खाद देते हैं। कुल बीस गाँव के बूढ़ों से लेकर बालकों तक लोग श्राद्ध भोज के लिए आ गए थे। आए हुए लोगों ने जो सामग्री लाई थी उसे एक जगह राँधा गया था। मैना के रूप में विधवा स्त्री की दशा को उपन्यासकार व्यक्त करते हैं- "भोज के पहले मैना अपनी सूनी मांग, सुनी कलाई और सफेद साड़ी में बिरादरी को हाथ जोड़कर अर्ज किया "अब तो हमको बार-बार ई बताना नई पड़ेगा कि हमरा मरद का का हुआ।" सौताल आदिवासियों की धार्मिक मान्यताएँ और श्राद्ध भोज जैसी बर्बर प्रथा उनके सर्वहारा जीवन पर भूत-प्रेत के समान सवार है।

'पाँव तले की दूब' उपन्यास में झारखंड का मेझिया गाँव बाघा मुड़ी आदिवासी परिवेश अंधविश्वास और डायन जैसे अमानवीय प्रथा का शिकार बना हुआ है। आदिवासी लोगों की दो कमजोर नसे हैं- अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सव धर्मिता इन्हें कंगाल बनाती रहती है। हंडिया या दारू ये पिएंगे ही और हर उत्सव को मस्त होकर मनाएंगे।" परिणामतः वे तमाम जिंदगी असभ्य, गरीब और अन्धमान्यताओं की गिरफ्त में फँसे रहते हैं। तन को कपड़ा और पेट को रोटी नहीं फिर भी

शराब और उत्सव छोड़ नहीं सकते। दिवा स्वप्नवादी अपनी कल्पना दृष्टि के कारण वह सच्ची प्रगति से कोसों दूर रहते हैं।

सुधीर मुरमू ओझा के उकसाने पर मेझिया वालों ने अपने ही गाँव की मंगरी नामक बांझ को तीन सौ रुपये और बकरा न देने के कारण डायन करार देकर पीट-पीटकर बेरहमी से मार डाला था। सुदीप्त डायन कुप्रथा को बयान करते हुए कहता है- "वहाँ एक औरत को डायन घोषित कर मार डाला है। आदिवासियों ने" ओझाओं की आदिवासी समाज पर पकड़ है। अगर उनकी मांग पूर्ण नहीं की गई तो वे साजिश के तहत आदिवासियों को भड़का कर अपने ही भाई-बंधुओं को प्रताड़ित कराते हैं। जब इस डायन बर्बर कुप्रथा के विरोध में जन जागरण किया गया तो ग्रामवासी हिंसक हो उठे थे और जन जागरण करने वालों को जान बचाकर भागना पड़ा था। धर्म आडंबर में उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी अटके हुए हैं। उनके पास काली लक्ष्मी है। उनको फर्क नहीं पड़ता पर आदिवासियों पर अंध संस्कृति का आक्रमण होने से वे और भी बदहाली में आ जाते हैं। आधुनिकता का ढोंग करने वाली इस अंधविश्वासी संस्कृति पर सुदीप्त व्यंग करता है। जिसके केंद्र में सिन्हा के बेटे की पार्टी है- "मुण्डन-छेदन पर पार्टी! तुम भिन्ना भी रहे थे, 'ये साले साइंस और टैक्नोलॉजी की उच्च शिक्षा प्राप्त आधुनिक होने का दम्भ पाले हुए लोग हैं और करवा रहे है मुंडन-छेदन! यू नो, ये जितने गलत संस्कार है न

जातिवाद, पुरोहिती, कर्मकांड, अंधविश्वास, दहेज सब सालों में समाया हुआ है और मॉडर्न बम्बईया कल्चर का कॉकटेल भी।" यहाँ आदिवासियों का शोषण करके मजे उड़ाए जा रहे हैं।

गाँव के अंधविश्वासी लोगों की धारणा है कि बाँझ औरत के कारण बीमारियां फैलती हैं और लेरू-काढ़ा के जान की वह औरत प्यासी होती है। इसलिए इस परिवेश में बाँझ औरतों पर हमला करके उसे मारा जाता है। जैसे मंगरी को मारा गया था। कालीचरण किस्सू ओझा सुधीर मुरमू का चेला है। सुदीप्त जब अंधविश्वास के खिलाफ बोलता है तब वह उनकी कनपटी पर पत्थर फेंक कर मारता है। मंत्र विद्या से वह झारखंड राज्य हासिल करने का दावा करता है। वह बाघ के नाखून और हड्डी से गैर आदिवासियों से बदला लेना चाहता है, मंत्र शक्ति के बल पर। सुधीर मुरमू को पुलिस कैद नहीं कर सकती वह जादू के बल पर जेल से बाहर निकल सकते हैं। ऐसी भ्रामक कल्पनाओं पर विश्वास करते हैं। सिवोंगा भगवान का उत्सव वे मनाते हैं।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में थारू आदिवासी अंधश्रद्धा और मंत्र-तंत्र में फँसे हैं। देवी को प्रसन्न करने हेतु बलि चढ़ाने की परंपरा थारूओं में है। मलारी खासी ले आई थी बलि देने के लिए और विसराम बहू ने पाँच रुपये में एक कबूतर बलि देने के लिए खरीदा था। जिसकी औकात केवल कबूतर की बलि देने मात्र की थी। देवी को लेकर

अंध मान्यताएं थारूओं में प्रचलित हैं। पारबती कुमार को बतायता है- "देवी का मस्तक हियाँ से दू कोस दूर गुमास्ता के पास है। कुआर में हुआ भी पूजा होती है। बिसराम की लड़की को साँप ने काटा था अब वह मर चुकी है। मर जाने के बाद भी ओझा मंत्र से उसे जिंदा करने की डींगे हाँक रहा है। मंत्र से मरा हुआ आदमी जिंदा होता है ऐसी उनकी अंध धारणा है- "लड़की मरी पड़ी थी। उस पर मंत्र पढ़ते हुए झूम रहे थे ओझा। उन्हें अभी भी विश्वास था कि वे उसे बचा लेंगे।"

इस परिवार में वनस्पति देवी को लेकर अंधश्रद्धा फैली हुई है कि वह डाकुओं की देवी है, देवी अलग-अलग रूप धारण करती है। आँखों पर पर्दा डाल देती है आज मान्यताएँ इस परिवेश में प्रचलित हैं। जंगल में रात के अंधेरे में कुमार और पारबती बहुत बार भटक जाते हैं। कहीं बाघ की दहाड़ सुनाई देती है तो कहीं कोई रोशनी की चिलकती है और कोई टेर सुनाई देती है। जंगल में पत्तों से कभी बाघ तो कभी साँप और हिरण की आवाजों के सुर सुनाई देते और लुप्त होते हैं। इस डरावने माहौल के संदर्भ में पारबती कहती है- "हजूर, वनस्पति देवी हैं, भटका रही हैं। डाकुओं की देवी हैं। कभी कोई रूप धारण कर लेती हैं। कभी कोई। और ऊ दिन भी ऊ लड़की, लड़की थोड़े ही थी, उन्हीं की माया थी। आँखों पर पर्दा डाल देती है मैया। जंगल के हर परिवर्तन और आवाज में पारबती को वनस्पति देवी की महिमा दिखाई देती है।

थारू अंध मान्यताओं के कायल हैं। उनकी मान्यता है कि साँप से मृत व्यक्ति को अगर नदी में बहाया गया तो नदी बिस सोख लेती है ऊपर मुर्दा जीवित हो जाता है। इसलिए सर्पदंश से मृत कों न गाड़ा जाता है न जलाया जाता है। गाँव की अंध मान्यताओं के अनुसार दुलारी को केले के तने पर बांधकर लाश को पानी में प्रवाहित किया गया है। तीन साल की दुलारी की मृत्यु पर पूजा-अर्चना भी कराई गई थी। और सूतक भी पालते हैं।

गहनों के नाम पर केवल आखिरी पूँजी हसुली उसे विसराम बहू गले से निकालकर क्रिया-कर्म के इंतजाम के लिए पति के सामने रख देती है। बिसराम की बेटी ने थाने में हिरण का मांस खाया था इसलिए वह भ्रष्ट हो गई और विसराम की बेटी ने गाय का दूध पिया इसलिए विसराम भी भ्रष्ट हो गया था। अब उन्हें शुद्ध करने हेतु ओझागरी का गोला कच्ची, पक्की धार। चुनर, मुर्गा और गांजे के चढ़ावे से नीम के चौरे के तले लोहबान सुलगाया गया है। फुल सजाए गए हैं। और ओझा मंत्र पढ़ रहा है। प्रायश्चित और पूजा के बाद विसराम का परिवार शुद्ध हो गया था। विसराम बहू की तबीयत सुधरने की अपेक्षा बिगड़ती जा रही थी। जानकार लोगों की मान्यता थी कि देवी देह का सत्त निचोड़ लेती हैं। पर देवी की कृपा से सब ठीक हो जाएगा। खेत का मुकदमा भी विसराम ही जीतेगा आदि चर्चाएँ चलने लगती हैं।

'लखरॉव' पूजा को आदिवासियों में अनन्य साधारण महत्व है। लखरॉव पूजा के लिए सारे डाकू आते हैं। खाना बनता है पूजा चलती है। डाकू स्वयं लूट, हत्या और बलात्कार आदि अपराधों से शुद्धि हेतु इस पूजा में आते हैं। जो डाकू पूजा में नहीं आता उसका हुक्का-पानी बंद किया जाता है। लखरॉव की विधियाँ इस तरह होती हैं लखरॉव को किसी महीने की कृष्णा चतुर्दशी को प्रदेश काल के पश्चात् ही यह अनुष्ठान आरंभ करें। इसमें भगवान शिव का विधिवत् पूजन किया जाता है। एक लाख पुष्प या एक लाख बेलपत्र 'ऊँ नमः शिवाय' के साथ प्रत्येक बार अर्पित करें। समाप्ति पर एक स्वर्ण बेलपत्र शिव को और एक स्वर्ण बेलपत्र पार्वती को अर्पित करें। इस व्रत से गौ हत्या, ब्रह्म हत्या, गुरु या पर स्त्री गमन, मद्यपान आदि महापात्र का नाश होता है"- इसका मतलब है कि मनचाहा पाप करो और धर्म की लॉटरी में शुद्ध होकर निकलो। थारू बाघ को मारते नहीं, उसे वे माँ भगवती का अवतार मानते हैं। वे उसे भगा देते हैं। रात को घर से बाहर कठौत में बाघ के लिए पानी रखते हैं। कुमार जब बीमार पड़ता है तब इसे वनस्पति देवी का साँप माना जाता है। फिर उसे चंगा करने के लिए हनुमान और विंध्याचल भवानी की मनौती, जाप पूजा करके ताबीज बाँधी जाती है। कुमार की माँ बताती है- "अइसे तो ठिकाता नहीं। ऊ तो धन्न भाग कि बहू ने पता लिया था पारबतिया से कि वनस्पति देवी का करोध है, पांडेय जी तांतरिक झाजी को ले आइन, हियाँ हनुमान जी और विध्यांचल भवानी का मनौती, जाप,

पूजा----- तब जाके------।" पारबती के कहने पर यह सब क्रिया-कर्म किया जाता है। ताबीज बांधते ही भवानी माँ की कृपा होती है। अब भवानी माँ ही कुमार की हर विपत्तियों में रक्षा करेगी।

दुसाधों में 'बारह, पूजा' की प्रथा है। अग्निकुंड जलाया जाता है। उसमें फल, अक्षत, अन्न, चावल, गुड़ की भेलियाँ आदि डाली जाती हैं। कोई बाबा 'अकवन का पत्ता' या केमिकल शरीर को मलकर कभी अग्निकुंड पर नंगे पाँव चलता है तो कभी जलती हाड़ी में हाथ डालता है। नटों की तरफ फुर्ती से बाबा करतब भी करते हैं। बंदरों की तरह बांस पर भी चढ़ जाते हैं। उनके इस असामान्य प्रताप को देखकर लोग बातें करते हैं- "अरे नहीं, वे तो सीधे दौड़ गए अग्निकुंड पर नंगे पाँव। जले नहीं? मजाल है, जल जाए। बोल-अ, बोल-अ राह बाबा की, बाबा की जै।' 'जै।' 'अरे-अरे। उन्होंने जलती हाड़ी में हाथ डालकर हाथ से करछुल की तरह चलाया। हाथ से भाप निकल रहा था।' 'जेले नहीं? ऊँ आदमी थोड़ हउएँ, बराह बाबा के सवारी न आइल बा उनका पर।" पूजा के बाद दुसाधों की शक्ति बढ़ जाएगी ऐसी उनकी अंध धारणा है। छौने को त्रिशूल पर रखकर बलि चढ़ाई जाती है। तंत्र-मंत्र का प्रभाव केवल सर्वहारा वर्ग पर ही नहीं तो कुमार भी इस पाखंड में फँसता नजर आता है। उसे धीरे-धीरे विश्वास होने लगती है कि मंत्र-तंत्र के अलावा मेडल मिलना असंभव है।

'सूत्रधार' उपन्यास में बाबा जी की जमीन को गाँव के एक बाबू साहब कब्जिया लेते हैं। पद, पंचायता, बटोर हद-पद त्यदर्थ था। लाल पगड़ी के डर से वे इजलास जा नहीं पाए। कथावाचक कहते हैं- 'सो उन्होंने बाबू साहब के नाम पर दाढ़ी-बार रख लिए। बाबू साहब के एक बैल को सांप ने काट लिया, फिर बाद में घर ढह गया तो, 'त्राहिमाम' करते हुए उन्होंने बाबा जी की जमीन वापस कर दी।" सर्वहारा समाज में ऐसी अन्ध मान्यताओं का प्रभाव अधिक है। धार्मिक अंधविश्वास के चलते विधवा धनी सिंह की पत्नी भिखारी को देखते ही भोंकार मारकर रोने लगती है। वह बाल छीले जाने के खौफ से डरी हुई थी। उसकी दशा कसाई के सामने मिमियाने बकरे के समान हो गई है। कथावाचक उसके रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं- "सारे बाल छिल जाने पर सफेद कपड़ों में कैसी लग रही थी वहाँ औरत। एक बार देखा, पीले गोरे मुखड़े पर छिली लटों की सफेदी, काली-काली बरौनियाँ, आंसुओं से चिपचिपाई पलकें और हिचकियों में खींचता गला----------फिर दोबारा देखने की हिम्मत न हुई।" विधवाओं की इस दयनीय दशा के लिए जिम्मेदार धार्मिक पाखंड है। धार्मिक आडंबर के कारण बाँझ औरत को मनहूस माना जाता है और उसकी छाया पढ़ने से गाय भी बाँझ होती हैं ऐसी असंगत मान्यता है। बाँँझ औरत से घृणा भी की जाती है। छठ मैया के सामने बाँझ औरत अपनी व्यथा बयान करती है- "हे दीनों के नाथ मैं बांझिन उस गौशाला में गोबर के लिए गई थी चरवाहे ने दुत्कार दिया- 'दूर हटो,

दूर हटो ए बाँझ मेहरारू, कहीं-कहीं तुम्हारी छाया पढ़ते ही मेरी गाय भी बाँझ न हो जाए। मुझ बाझिन से सभी घृणा करते हैं।" इस औरत का विश्वास है कि माँ उसकी सुनी गोद को भर देगी।

'आकाश चम्पा' उपन्यास में ब्राह्मणों को अपने धर्म का अहंकार है। जनेऊ त्यागने के कारण मामी के पति को जाति और गाँव से वहिष्कृत किया गया था। महाराजिन को अपनी मृत बेटी के रात भर खिड़की पर दस्तक देते दिखाई देती है। मृत बेटी की आत्मा को शांति और स्वयं को मुक्ति हेतु वह हनुमान चालीसा और शास्त्रों का पाठ करती है। स्वयं महाराजिन और फेकू सिंह ने डाल पर लटकाकर उसकी हत्या की थी। महाराजिन और फेकू सिंह के अनैतिक संबंधों को गंगवा ने देखा जो था। अब वह प्रेतमुक्ति के लिए पूजा, अर्चना का रास्ता अपना रही है- 'कोई बात नहीं, इसको हाथ में लेकर बैठ जाइए। हम आप करते हैं। आपके लिए- श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधार--------। वह मुक्ति के लिए तीरथ निकलती है।

'रानी की सराय' उपन्यास का रानी सराय गाँव धर्मांधता के कारण पिछड़ गया है। इस गाँव के पेड़ पौधों पर भूत और चुड़ैलों का बसेरा माना जाता है। उन्हें खुश करने के लिए पेड़ों पर झड़े-पताके और घंटे बांधे जाते हैं। इस गाँव में कोई भी अप्रत्याशित घटना होती है तो उसे भूतों की करतूत माना जाता है। नाले का पुल नाले की

गोद में समा गया और नाम हो गया भूत का। इस गाँव के संदर्भ में आसपास के गाँव की औरतें सहमते हुए कहती हैं- "रानी सरैया हाय मोरी दैया। भूत छोड़कर धरा है क्या उस गाँव में?" वे नाले के पुल को भूतहा पुल मानते हैं। रात को पुल के पास नीली-नीली लपटों के बीच प्रेत किलकारियाँ मारते हैं।

सर्वहारा समाज को लूटने वाले गुदड़ी साहू के स्वप्न में यमराज का वाहन भैंसा आता है और अपना मंदिर बनवाने का आदेश देता है साथ ही उसके भक्तों पर अविश्वास न दिखाने की हिदायत देता है- "यमराज ने गाँव की रखवाली करने के लिए मुझे भेजा है, मुझे पहचानते हो? हुकुम महाराज--------।"----- मेरा एक मंदिर बनना चाहिए।--------" "बनेगा महाराज। 'मेरे भक्तों पर अविश्वास मत करना।" दूसरे ही दिन चंदा इकट्ठा करके मंदिर बनवाया जा रहा है। एक काना भैसा गाँव में आया है यमराज का वाहन होने के कारण वह मनमाने ढंग से खेत चरता है कोई क्यों उसे हकाले। लाल कपड़ा पहने व्यक्ति पर वह हमला करता है। जो चाहे करें यमराज का वाहन जो ठहरा।

इस गाँव में बीमारी का इलाज ओझा करता है। भूत उतारने के लिए बकरा, सूअर, गरी गोला, नींबू काटना पड़ता है। कभी-कभी सूरजू की माँ पर भूत सवार होता है- "हमको इसके मर्द ने मारा है, इसे और इसके बच्चे को नहीं छोड़ूंगा, नहीं छोड़ूंगा।" माँ की

भाषा बदलते ही दहशत खाया सुरजू उसे देखता रहता है। ओझा को ही उसकी भाषा समझ आ सकती है। माधव बाबा और सुलेमान मियां की रोजी-रोटी का साधन ही ओझाई था। काने भैंसे की शांति के लिए अक्सर टोटके कराए जाते थे। भैसे और भूत के नाम पर सर्वहारा समाज को लूटना मात्र उद्देश्य है। उल्लू के चीखने की आवाज, गिद्धों के पंखों की फड़फड़ाहट और श्मशान में जो नीला-नील रंग चमकता है, उसे वे प्रेतलीला मानते हैं। वास्तविकता यह है कि श्मशान में हड्डियों का फास्फोरस हवा के रगड़ खाकर नीला-नीला चमकता है।" ऐसा भूत प्रेत का हौवा खड़ा करके ही अनपढ़ सर्वहारा को लूटा जा सकता है। असली भूत ओझा, दरोगा और गुदड़ी साहू हैं।

६.२ उत्सव और त्योहार का संकट

आदिवासी गैर आदिवासियों के साथ अपनी आदिम जीवन पद्धति के कारण भी एक हद तक प्रताड़ित हैं। अरण्यमुखी संस्कृति इनके दुख दर्द के लिए जिम्मेदार है। वे इसी संस्कृति से चिपके रहना चाहते हैं। परिणाम स्वरूप आज भी वे अविकसित और विकास की मुख्यधारा में अपनी जगह नहीं बना पा रहे ।

'गुफा का आदमी' कहानी में बोंडा आदिवासियों की बेमेल विवाह प्रथा का वर्णन किया गया है। पुरानी परंपराओं को वे आज भी आँख मूँदकर पालन करते हैं। भयंकर गरीबी के चलते बालों को तेल तक नहीं मिलना इसलिए बालिका से वृद्धा तक औरतों का मुंडन किया जाता है। यहाँ तेल की किल्लत की अपेक्षा परंपरा अधिक महत्व रखती है। इस बोंडा आदिवासियों में विवाह पूर्व देह संबंधों को स्वीकृति दी जाती है। केवल गाँव को भोज खिलाना पड़ता है। सोमा और तय्यब चा सोलह वर्ष की सोमा का विवाह आठ साल के शुकरा के साथ किया गया। सोमा कुछ वर्षों बाद बच्चे की माँ बनी। बच्चे का नाम मंगरा रखा गया। पत्नी पति को बच्चे के समान पालती है। आठ साल की अवस्था में मंगरा का विवाह सोलह साल की शुकरी के साथ किया जाता है। ससुर और पतोह हम उम्र होने की वजह से यौनाचार करते हैं। पुरुष बाल विवाह की प्रथा यहाँ प्रचलित है।

अंधविश्वास युक्त मनगढ़ंत कहानियों का प्रभाव बोंडा आदिवासियों के जीवन को घेरे हैं। अभाव के कारण यहा औरतें कम-से-कम कपड़ा पहनती हैं। पूछने पर सीता के साप का उदाहरण देते हैं- "पूछने पर मालूम हुआ कि वहा एक सीताकुंड है जहाँ वनवास के दौरान एक दफा सीता जी नहा रही थी। जेठ का महीना था। शायद कपड़े नहीं रहे होंगे बदन पर। उन्हें ऐसी सूरत में देखकर कुछ बोंडा लड़कियाँ हँस

पड़ी। वह हँसी पहाड़ियों से टकराकर लौटी तो लगा पहाड़ियाँ भी हँस रही हैं। बस खफा हो गई सीता जो, गुस्से में सराप दे डाला, "जाओ नंगी रहोगी।" तब से लड़कियाँ भी नंगी हैं, पहाड़ियाँ भी।" दूसरी कथा बालि सुग्रीव की है, जहा बालि गुफा के अंदर रह गया सुग्रीव बाहर। बोंडा आदिवासी आज भी जस-की-तस अवस्था में है।

'जीवन के पार' कहानी में अंधविश्वास और दहेज जैसे ही वधू मूल्य (गोनोंग) जैसी बर्बर प्रथा का वर्णन किया गया है। सिंहभूमि जिले के मुड़हुड़ा गाँव में गोनोंग नाम की बड़ी भयंकर दहेज प्रथा प्रचलित है। वधू का पिता अपनी प्रतिष्ठा के लिए अधिक वधू मूल्य या कम वधू मूल्य में बेटी के हाथ पीले नहीं करते। चालीस पचास की औरते कुवारी ही मर जाती हैं। पिता का स्वार्थ है यह है कि अगर कमाऊ लड़की चली गई तो घर पशु और खेती कौन देखेगा इसलिए वह विवाह के विरोध में रहता है। जात-बिरादरी के नियमों में पिता बहशी बन जाता है। बाप को यह रोग जात-बिरादरी ने दिया है। मानसिंह और ववामई खेल-खेलते हुए वधू मूल्य के समय पिता के रवैया को खेल द्वारा दर्शाते हैं। वामई बनी है 'पिता' और मानसिंह वामई का हाथ मांग रहा है तब पिता कहता है- "हुह ये बैल!" डीयंग(भात की शराब) के नशे में झूम के वामई के बाप की आँखें हिकारत से सिकुड़ जाती, एकरा से का होगा? गाँव भर की चरवाही करके तू कितना जुगाड़ कर पाएगा मान? अरे, तनी अच्छा-अच्छा बैल

और गो पाठा, आधामन चाठर (चावल) और पांच सौ रुपैया ले आ, तब जाकर वामई का हाथ माँग।" बोंडा आदिवासियों में वधू मूल्य के अभाव में लड़कियाँ कुंवारी ही अधिक मरती हैं।

सिंबोगा को वे जगत के पालनहार मानते हैं। साथ ही भूत-प्रेत, सुर-असुर आदि पर वे पक्का विश्वास रखते हैं। मानसिंह बताता है- "अब सिंबोगा ठहरे जगत के पालनहार। मगर असुर लोगों को अपनी बुद्धि पर घमंड था, वे उन्हें क्या मानने लगे असुरों के पास भी बड़ी अक्ल जादू-टोना। वे लोहा गलाते थे, लोहा माने छुरी, माने टांगी। तो लोहा गलाने के लिए ढेर आग, ढेर गर्मी की जरूरत होती तो उसकी तपन से जीव-जंतु, खेती पेड़ रुख सब झुलसने लगते--------।" मानसिंह जिंदा है फिर भी लोग कहते हैं जिस समय वामई मर गई थी उसी समय मानसिंह भी मर गया था। यह उसकी प्रेतात्मा है। सिंबोग का अवतार लेकर हमारी-बीमारी को नष्ट करना आदि अंध मनगढ़ंत मान्यताएँ आदिवासियों में प्रचलित हैं।

'हिमरेखा' कहानी जौनसार- बाबर, चकरौता में प्रचलित वहु पतीत्व को अपना उपजीव्य बनाती है। यहाँ पत्नी ही भाभी है और भाभी ही पत्नी है। विवाह केवल बडे भाई का होता है अन्य भाईयों की वह अपने आप पत्नी बनती है। द्रौपदी तथा पांच पांडवों वाली संस्कृति यहाँ अधिक प्रभाव है। यहाँ की जनजातियाँ अपनी इस प्रथा पर गर्व

महसूस करती हैं। जिस पर आधुनिक समाज व्यंग्य करता है। कपिल इस परम्परा के कारण दोस्त व्यंग्य के कोड़े बरसाते हैं- "अरे असल इसके यहाँ की परम्परा ही है कि परिवार में चाहे जितने भी भाई हो, शादी सिर्फ बड़े भाई की होगी और बाकी भाई भी उस औरत के पति मान लिए जायेंगे। इज इव? यू मीन द्रौपदी ट्रैडीशन आज भी।" शास्त्र और मनगढ़ंत कहानियों का सहारा लेकर यह जनजाति अपनी बहुपतित्व की परम्परा का समर्थन करती है जबकि हकीकत यह है कि जमीन बँटे इसलिए यह परम्परा मजबूरी में बनी।

कपिल जब अपनी मातृ तुल्या भाभी को पत्नी मानने में असमर्थता दर्शाता है और इस परम्परा का विरोध करता है तब शास्त्र का हवाला देकर जोशी कहते हैं- "शास्त्रों में औरत के पति के छोटे भाई को देवर कहा गया है, देवर माने दूसरा पति।" अंध रीति-रिवाजों में बँधा यमुनोत्री अंचल का जनजातीय समाज जमीन-जायदाद के बंटवारे को रोकने के लिए बहु पतित्व प्रथा को अपनाता है। यहाँ पंचों का निर्णय अंतिम होता है। इसलिए तो सात साल बड़ी भाभी से कपिल को जबरदस्ती बाँधा जाता है।

६.३ आदिवासियों की भाषा पर संकट

सुनीति चटर्जी ने आदिवासी भाषाओं के बारे में यह चिंता व्यक्त की है कि अधिकांश भाषाएँ धीरे-धीरे मर जाएंगी। आदिवासी भाषा के अस्तित्व का सवाल आदिवासी संस्कृति व परंपरा से जुड़ा हुआ है। तथाकथित विकास कहें या बाहरी दबाव के चलते आदिम जीवन शैली में परिवर्तन अवश्यंभावी है जिसका प्रभाव संस्कृति व परंपरा व अंततः भाषाओं पर पड़ना स्वाभाविक है। आदिवासी भाषाओं का संरक्षण तभी संभव होगा जब आदिवासी संस्कृति व परंपरा पर गर्व किया जाए और आदिवासी भाषाओं में लिपिबद्ध कर संकलित किया जाए। इसके बाद अनुवाद का मुद्दा सामने आता है।

यूनेस्को की वर्ष २००९ की रिपोर्ट में विश्व की कुल ६००० भाषाओं में से गत ७५ वर्षों में २०० भाषाओं के लुप्त हो जाने का तथ्य उजागर हुआ है साथ ही २५०० भाषाओं को खतरे में बताया गया है। इनमें से १९६ भाषाएँ भारत की जिनमें अधिकांश आदिवासी भाषाएँ हैं। आदिवासी भाषाओं के लुप्त होने का प्रमुख कारण आदिवासी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाना है। दूसरा प्रमुख कारण लिपियों का अभाव है। उदाहरणार्थ संथाली भाषा आंचलिक लिपियों को अपनाती है। जो दूसरी भाषाओं से संबंधित हैं अर्थात् बंगाल में बंग्ला, उड़ीसा में उड़िया, धर्मांतरित संथालो में अंग्रेजी तथा बिहार, झारखंड में देवनागरी। विकसित संथाली लिपि ५वीं लिपि के रूप में सामने आती है।

भारतीय महाद्वीप में नेतृत्व विज्ञान एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से आर्य व अनार्य प्रजातियों के अनेकानेक मानव समुदाय रहते आये हैं। इनमें से जो मानव समुदाय सभ्यता के विकास के साथ परस्पर विकसित होने वाले अंतः संबंधों के कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्तर पर भारत के मुख्य समाज का हिस्सा बन गए उनकी मौलिक भाषा व संस्कृति की खोज करना काफी दुष्कर कार्य है। इसके इतर जो मानव समुदाय अभी भी अपने अतीत से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्तर पर जुड़े हुए हैं और परंपरागत मानसिकता एवं जीवन शैली को अपनाये हुए हैं वे मानव समुदाय आदिवासी समाज की श्रेणी में आते हैं। उनकी संस्कृति के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण भी उनके बीच जाकर उन्हें समझने के साथ संभव है। इस विषय पर निश्चित रूप से प्रमुख कार्य ब्रिटिश काल में हुआ। जब भारत के परिपेक्ष में आदिवासी भाषाओं की बात करते हैं इनका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

इण्डो-आर्यन परिवार-

अश्मी, वैजकी, बंजारी, बंगला, भाटी, भील, झुग्गिया, चकया, धानकी, धोलिया, ढुढ़ाडी, गडियाही, गमित, गावैती, गोजरी, गुर्जरी, गुजराती, हाजोम, हल्की, हड़ौती, जोनसरी, कच्छी, खोटा, किम्बुई, कोकडी, कोटवालिया, लुम्बनी, लारिया, मगाडी, माहल, मराठी, मावती, न्यूरी,

नागपुरी, लैकरडी, निमाड़ी, बोडिया, सहहोली, राठी, सिन्हा, वारन, बंगाली, कराली।

तिब्बत-वर्मा परिवार-

आदिआंशीग, आदिबोकर, आदिबोरी, आदिगेलांग, आदिकोमकार, आदिमिलिंद, आदिम्योग, आदिपदम, आदिकारको, आदिमिलनंद, पईलिम्बों, आदिमोसी, आदिरामो, आदिसिमोंग, आदितगम, एईमोल, अनाल, अगामी, ऐवो, अपातानी, बाल्टी, बांगली। दफला,बाम, भोटिया, बायते, बोडो, बुगुन, चाखे, संग, चम्पा, चंग, चेरु, छोटे, चुंग, डालू, देवरी, दोपा, द्रोस्कात, दुहलियन, त्वांग, गेग्क्टे, गारो, हैल्म, हूमर, हुशो। आंका, ह्मालंगो, काबुई, कचारी, कागती, काक, क्राक, खम्बा, खम्प, खिया, मांगन, कोच, कोईरंग, कोन्यांक, कुकी, लडाखी, लाहोली, लेई-हवल्ह, लोखेर, मारा, लालूग्ग, लायगेंगा, लेप्चा, लिशु, लोडा, लुसई। मिजा, मोघ, माओ, मरम, मौरिंग, मैम्बा, मिकिर, मिरी, मिशींग, मिस्मी, मोन्पा, मोयोन, ना, नगा, शेरदुव्यपेन, निशि, नोक्टे, पैते, पांग, फोम, फोचुरी, राल्टे, रेंग्गा, रियांग, सजलोंग। मिजू, सगताम, शेमा, शेरपा, सिग्फो, सुलुंग, तागिम, ताग्सा, थाडो, ताकहुल, तिब्बती, टोटो, वैफेई, वांचो, यिम-चिग्र, जखरिंग, मेयर, जेमी, जोऊ।

द्रविड़ परिवार-

ध्रूवा, गडावा, गोंडी, केडर, कन्नड़, कोडागू, कोलामी, कोरगा, कोटा, कोया। कोई, कुई, कुरुख, कुवी, मलयालम, मात्ता, मारिया, नायकी, पारजी, पैंगो, तमिल, तेलुगू, टोडा, तुलू, विनर्वन, पेरुकुला।

आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार-

असुरी, भूमिज, विरहोर, विरजिया, बोडो, डिडे, गुतोब, हो, जुआंग, खडिया, खासी, खेरवाडी, कार्कू, कोर्वा, कुर्मी, लोधा, मुंडारी, निकोबारी, संताली, सओरा। सेवरा, शोम्फेन, थार।

अंडमानी परिवार-

अण्डमानी, जारवा, ओंग, सेंटनली।

चीनी परिवार-

खाम्पती

अवर्गीकृत समूह-

मोन्चाट

प्रख्यात भाषा वैज्ञानिक डेविड हैरीशन और ग्रेग एंडरसन ने विश्व की विलुप्त होती हुई भाषाओं का अध्ययन किया। एक अनुमान के अनुसार विश्व की कुल वर्तमान ७००० भाषाओं में से अधिकांश संकट के कगार पर हैं। प्रत्येक माह में दो भाषाएँ अस्तित्व खो

रही हैं। इस वैश्वीकरण के दौर में यह रफ्तार और तेजी से बढ़ने लगी है, जबकि लोगों के सामने वैश्विक भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा दिखाई देती है। इस तरह विलुप्त होने वाली भाषाओं के साथ अपनी-अपनी एक परंपरा, अतीत, इतिहास और सोचने का अपना-अपना तरीका गायब होता जाता है। विशेष रूप से आदिम समुदायों की जो भाषा की समृद्ध परंपरा रही है और इन समुदायों की समग्र जीवन शैली को लेकर चलती रही है जिसमें प्रकृति से उनके सामंजस्य और मानवेतर प्राणी जगत के साथ सह अस्तित्व महत्वपूर्ण पक्ष रखते आये थे।

भाषा एक मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती है और भाषा के विलुप्त होने के साथ उस मानसिकता दृष्टिकोण एवं संस्कृति का नष्ट होना निश्चित है। पूर्वोक्त दोनों विद्वानों का यह निष्कर्ष है कि किसी मानव समुदाय को अपनी मौलिक भाषा के साथ नई अपनाई जाने वाली भाषा को सीखने में कोई बाधा नहीं आती और कोई भी व्यक्ति अपनी मूल भाषा नई भाषा में अपनी बात कह सकता है। इन भाषा वैज्ञानिकों ने 'दा लिंग्विस्ट एयरिंग' नामक शीर्षक से एक डॉक्यूमेंट्री तैयार की। यह फिल्म यह संदर्भ देती है की भूमंडलीकरण एक बड़ा छाता है, लेकिन हमें इसको तोड़ देना चाहिए। हैरीशन का कहना है कि वर्तमान में कई तरह की आर्थिक शक्तियाँ, विचारधारा और सामाजिक दृष्टिकोण जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। यह भ्रांति फैलाई जाती है कि सफलता प्राप्त करने के लिए

अपनी देशी भाषा का त्याग करना होगा और अंग्रेजी या स्पेनिश किस्म की वैश्विक भाषा को अपनाना होगा, लेकिन काफी लोग यह भी महसूस कर रहे हैं कि पहले द्वि-भाषी होकर एक भाषा की सीमा से आगे अधिक ज्ञान अर्जित किया जा सकता है। जैसे-जैसे हम अधिक स्वीकृत होते जाते हैं और वर्चस्व वाली मौलिकता भाषा को अपनाते जाते हैं वैसे-वैसे लोग अपनी संस्कारगत मानसिकता तथा मौलिकता से लगाव के कारण अपनी मूल भाषा की तरफ लौटने भी लगते हैं।

जटिल सवाल यह है कि प्रगति के लिए अनिवार्य राष्ट्रीय सामाजिक या वैश्विक भाषा को अपनाने के साथ क्या हम अपनी परंपरागत मौलिक भाषा को संरक्षित नहीं कर सकते। यह वैसा ही है जैसे विभिन्न अभिलेखागारों या संग्रहालयों में नाना प्रकार की प्राचीन पांडुलिपियो के संग्रहण को अनिवार्य समझा जाता है, जबकि इन सबका सुरक्षित संग्रहण नई तकनीक के माध्यम से इस स्कैन या फोटोग्राफी और कंप्यूटर में या बैकअप के रूप में सीडी/डीवीडी आदि में किया जा सकता है। जिस कदर पांडुलिपियों या अन्य वस्तुओं को संग्रहालयों या अभिलेखागारों में जिस प्रकार सुरक्षित रखा जा सकता है वैसे तो भाषा को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता लेकिन नई तकनीक के माध्यम से उसकी लिपिबद्ध व मौखिक धरोहर को संरक्षित किया जा सकता है। इसके लिए हमें उन बंद समाजों तक जाना होगा जहाँ अतीत जीवी भाषाएँ बोली

जाती हैं और निश्चित रूप में ऐसे समाज आदिवासी जगत का हिस्सा दिखाई देंगे।

विलियम एच, जेक्बसन(जूनियर) ने आदिवासी भाषाओं पर गहन अध्ययन किया है। उनका निष्कर्ष है कि कैलिफोर्निया क्षेत्र में करीब १०० किस्म की भाषाएँ बोली जाती थी जिनमें से अधिकांश भाषाएँ विलुप्त हो चुकी हैं। भाषा अध्येता श्वेता सिन्हा ने उड़ीसा के छात्रों पर अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि उड़ीसा से अधिकतर मूल भाषाएँ प्रायः समाप्त हो चुकी हैं। छात्र अपनी मूल भाषा को छोड़कर परिस्थिति वश उड़िया या अंग्रेजी को अपनाते हैं। उनका कथन है कि समाज के किसी भी तबके की सर्वप्रथम पहचान उसकी भाषा से होती है।

शिक्षा को आदिवासी भाषाओं के माध्यम के रूप में अपनाए जाने पर खूब बहस हुई है। एक साधारण व्यक्ति के स्तर पर ज्ञानवर्धन के लिए मौलिक भाषा जितनी प्रभावी होती है उतनी नई भाषा नहीं होती। मध्यम की भाषा अपना संपूर्ण मुहावरा और परिवेश लेकर चलती है। इसका संबंध वंशगत ज्ञान संपदा से होता है।

सामान्यतः कहा जाता है कि प्रणाली भाषा वह है जिसका व्याकरण और लिपि हो ताकि उसके प्रतिमान एवं संप्रेषण की प्रणाली की पहचान संभव हो सके। इससे पृथक बोली(dialect) के बारे में इन दोनों प्रमुख तत्वों का अभाव बताया जाता रहा है। भारतीय संदर्भ में

संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं के अलावा अन्य को भाषा का दर्जा देना एक शासकीय मुद्दा है। आरंभ में १५ भाषाओं से वर्तमान की २२ भाषाओं का सूचीबद्ध होना इसका प्रमाण है। आंचलिक दबाव के चलते भविष्य में भी अन्य कुछ भाषाओं के इस अनुसूची में शामिल होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। इसलिए संविधान की इस अनुसूची को भाषा एवं बोली के अंतर को समझने के लिए प्रमाणिक आधार नहीं बनाया जा सकता है। जिन्हें हम बोली कहते रहे हैं; उनका भी व्याकरण होता है चाहे वह परिपक्व या विकसित रूप में नहीं मिलता हो। लिपि भाषा की अभिव्यक्ति का माध्यम है। एकाधिकार भाषाओं की समान लिपि संभव है। अतः यह दोनों तत्व भी इस रूप में भाषा के अनिवार्य तत्व नहीं माने जा सकते।

भाषा शास्त्रियों के स्तर पर प्रायः यह माना जाता रहा है कि बोली का किसी भाषा के रूप में विकसित होने के पीछे उसका व्यवस्थित, विकसित व विस्तारित होना आवश्यक है। निश्चित रूप से यह व्यवस्थित और विकसित होना कहीं न कहीं कुछ ऐसे प्रतिमान्यताओं का आग्रह करता जिसे अंततः व्याकरण ही कहना होगा। जहाँ तक विस्तार की बात है, तो कुछ बोली को भाषा के स्तर पर पहुँचने के लिए अपने स्थानीयता से बाहर निकलकर फैसला होगा जिसमें संप्रेषण व्यापक स्तर पर स्वीकार किए जाने की यात्रा अग्रसर होगी, यथा व्यापार, वाणिज्य व

बाजार के स्तर पर कुछ बोली का प्रयोग, बस रेल का हवाई यात्रा, दर्शनीय स्थलों का भ्रमण, शिक्षा अर्जन के लिए या फिर रोजगार के लिए। लेकिन मैं इससे सहमत नहीं। बहुत झिझक लेकिन विश्वास के साथ में यह बात कह रहा हूँ।

जब मैं, 'आदिवासी भाषाओं' के स्थान पर 'आदिवासी भाषा' फ्रेज का प्रयोग कर रहा हूँ तो इसके पीछे एक तर्कसंगत प्रयोजन है। वह प्रयोजन यह है कि शब्द से परे संकेतों और स्वर के स्तर पर भी अपनी बात को संप्रेषित करने की क्षमता रखते हैं। यह संप्रेषण-माध्यम जिसमें शब्दों के साथ स्वर और संकेत भी शामिल हैं- कौन सी भाषा है? इसका कौन सा व्याकरण है और काउंसिलिंग अपेक्षित है?

स्वर, संकेत और प्रतीकों की इस भाषा का प्रयोग बिरसा मुंडा ने वर्तमान झारखंड में, गोविंद गुरु ने राजस्थान में, जोर जी भगत ने गुजरात में किया और मैंने देखा अंडमान के जारवा व संतन अली इस भाषा को चाहिए अबोली व बोली से भाषा बनने के लिए जो अपनी बात कहने में पूर्णता सक्षमत रहती आई है।

इसलिए प्रथमतः आदिवासी भाषाओं, जिन्हें बोलियों के नाम से जाना जाता है, को मैं, 'आदिवासी भाषा' की संज्ञा देना चाहूँगा। द्वितीय, व्याकरण, लिपि और विस्तार को किसी भी बोली के भाषा बनने के आधार पर संदेह करना चाहूँगा। बिहार-झारखंड के

एकाधिक आदिवासी समूहों की भाषा में अभिवादन के लिए 'जोहार' शब्द इस्तेमाल किया जाता है। राजस्थान में 'जुआरा' या 'जुहार' शब्द काम में लिया जाता है। तो स्वर संकेतों के अलावा शब्दों के स्तर पर भी समानता दिखाई देगी अगर हम गहराई में जाएं। विडंबना यह रही है कि आदिवासी भाषा के मुद्दे पर फादर हॉफमैन जैसे लोगों के अलावा किसी ने काम नहीं किया। जिन्हें हम हिंदी भाषा के विद्वान कहते हैं किसी ने इस क्षेत्र में गंभीर एवं अधिकारिक योगदान नहीं दिया।

इसकी एक बड़ी वजह यह रही है कि आदिवासी समाज शेष समाज, जिसे मुख्यधारा का समाज कहा जाता है, से भौगोलिक स्तर पर अलग-अलग रहा और मध्यमवर्गीय मानसिकता वाला शोधार्थी व अध्यार्थी उस तक नहीं पहुँच सका।

भारत में चिन्हित कुल करीब एक हजार (अनुसूचित जनजाति, अपरि गणित एवं घुमंतू सब मिलाकर) किस्म के आदिवासियों की करीब ४०० बोलियाँ है। इनमें भील, संथाल, गौंड, मुण्डा, खासी जनसंख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

माह फरवरी २०११ में मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ आदिवासी अंचलों में जनगणना के दौरान सरकारी कर्मचारियों ने आदिवासियों को यह कहा कि वे धर्म के खाने में हिंदू व भाषा के खाने में हिंदी लिखें। मध्यप्रदेश के जबलपुर, मंडला तथा छत्तीसगढ़ के सरगुजा

अंचल के गौंड आदिवासियों ने इसका विरोध किया। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों पर यह भी आरोप लगाया कि हिंदू है हिंदी नहीं लिखने वाले आदिवासियों को यह कहा जाता है कि अगर ऐसा नहीं किया गया तो उन्हें सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं मिलेगा।

गोंडवाना गणतंत्र पार्टी की ओर से भारत के जनगणना आयुक्त एवं रजिस्ट्रार जनरल को इस संबंध में ज्ञापन दिया गया। गोंडवाना गणतंत्र पार्टी के महासचिव हरि सिंह मरावी ने यह आरोप लगाया कि सत्ताधारी भारतीय जनता पार्टी के इशारों पर जनगणना के दौरान यह गैरकानूनी कृत्य किया जा रहा है। जनगणना के दौरान आदिवासियों में इस तरह की सूचना से हमेशा के लिए गलत आंकड़े संकलित होंगे जो भाषा एवं धर्म के स्तर पर आदिवासियों की अस्मिता के साथ खिलवाड़ होगा। भारत की आदिवासी भाषा एवं धर्म जो कि विशिष्ट प्रकार के रहे हैं। उनकी मान्यता के सवाल के साथ एक ऐतिहासिक भूल भी होगी और भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए गलत निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य करेगी।

जब हिंदी भाषा और आदिवासी भाषा के अंतर संबंधों की बात करते हैं तो कुछ बिंदु जेहन में उतरकर सामने आते हैं इनमें प्रमुख बिंदु है-

★ राष्ट्र के मुख्य समाज से पृथक रहने की वजह से आदिवासी समाज मुख्य समाज से अपेक्षित अंतर्क्रिया नहीं कर सका। साथ ही हिंदी की लोकप्रियता के लिए उसे अभियान के रूप में आदिवासियों के बीच नहीं लिया गया। यह इसलिए जरूरी था आदिवासी समुदाय ऐसे लोगों का बना हुआ है जहाँ उनकी दृष्टि से बाहरी कोई भी बात बड़ी मुश्किल से पहुँचती रही है।

★ ईसाई मिशनरियों की भूमिका आंग्ल भाषा के दृष्टि से महत्वपूर्ण रही विशेष रूप से पूर्वोत्तर क्षेत्र में। इसकी वजह से वहाँ अंग्रेजी भाषा को अपनाया गया न कि हिंदी को।

★ हिंदी साहित्य में आदिवासियों को अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाया। आदिवासी मुद्दों को लेकर जो भी मौलिक कार्य हुआ वह अंग्रेजी भाषा में और विडंबना यह कि वह भी विदेशी विद्वानों द्वारा चाहे वह इतिहासकार थे समाजशास्त्री थे नृतत्व वैज्ञानिक थे या अन्य कोई।

★ आदिवासी भाषा के मौखिक एवं लिपिबद्ध साहित्य के हिंदी अनुवाद की समस्या अपनी जगह महत्वपूर्ण है।

आदिवासियों में हिंदी के प्रति भावनात्मक लगाव का अभाव रहा है। यह वैसा ही है जैसा द्रविड़ भाषी लोगों की हिंदी के प्रति झिझक।

सकारात्मक एवं संभावना भरा पक्ष यह है कि आदिवासी समाज में उनका भव्य वर्ग उभर रहा है और वैश्वीकरण के इस दौर में अंग्रेजी के समानांतर हिंदी का संप्रेषण माध्यम के रूप में आदिवासियों द्वारा उपयोग का विस्तार हो रहा है। आशा है कि प्रक्रिया गति पकड़ेगी।

प्रख्यात चित्रकार एवं विचारक प्रभु जोशी ने 'पहल' पत्रिका के अंक-९० में लिखा है ,कि 'डेविड क्रिस्टल' एक शब्द की मृत्यु को एक व्यक्ति की मौत के समान मानते हैं। अंग्रेजी कवि ऑडेन बोली के शब्दों को इरादतन अपनी कविता में शामिल करते थे कि कहीं वे शब्द मर न जायें। महाकवि टी• एस• इलियट प्राचीन शब्द जो शब्दकोश में निश्चेष्ट पड़े रहते थे, को उठाकर समकालीन बनाते थे कि वह फिर से सांस लेकर हमारे साथ जीने लगे।

अंततः यह कहना समीचीन होगा कि आंचलिक, राष्ट्रीय और वैश्विक परिपेक्ष में माध्यम के लिए भाषाओं की आवश्यकता को देखते हुए दीगर भाषिक परंपराओं का जहाँ तक संरक्षण किया जा सके वह किया जाना चाहिए, यह मानते हुए की भाषा की मौत मनुष्य की मृत्यु से कम नहीं।

६.४ प्रचलित कथा भाषा एवं आदिवासियों की भाषा

कथा साहित्य में आदिवासी जीवन से संबंधित संभवतया देवेंद्र नाथ सत्यार्थी का सन् १९५२ में छपा 'रथ के पहिए' नामक उपन्यास सामने आता है, जिसमें मध्य प्रदेश के गौंड आदिवासी जनजीवन को कथावस्तु बनाया गया है। इस उपन्यास में गौंड आदिवासियों की प्रामाणिक और संवेदनशील अभिव्यक्ति है। 'समकालीन जनमत' (सितंबर-२००३) के संपादकीय मे रामजी राय ने लिखा है कि "आदिवासियों के जीवन की दशा को गहराई से दिखाने पर राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, समानता, सभ्यता, सर्वांगीण विकास जैसे शब्दों के अर्थ खोखले लगते है। जिसे राष्ट्रभाषा घोषित किया गया, उसी राष्ट्रभाषा हिंदी में आदिवासियों की जिंदगी से संबंधित किताबें या साहित्यिक रचनाएं बहुत कम मिलती हैं।" हिंदी के अधिकांश पाठकों ने आमतौर पर महाश्वेता देवी के उपन्यासों के अनुवाद के आदिवासियों के ऐतिहासिक संघर्ष और उनकी समस्या तथा प्रतिरोधों की वजहो को जाना है। शुरुआती पंक्ति में आने वाले उपन्यासों में रेणु का 'मैला आँचल'(१९५४) को लिया जा सकता है, जिसमें संथाल आदिवासियों के कुछ प्रसंग हैं। देवेंद्र सत्यार्थी ने ही 'रथ के पहिए' के पश्चात ब्रह्मपुत्र (१९५६) लिखा। पूर्वोत्तर के आदिवासियों पर आधारित हिंदी का यह पहला उपन्यास रहा, जिसमें आदिवासियों के जीवन के विभिन्न पक्षों के साथ प्रकृति, बाढ़ और बर्बादी की प्रतीक ब्रह्मपुत्र नदी और उसी को कथा नायिका के रूप में स्थापित किया गया है। सन् १९५६ में उदय शंकर भट्ट का उपन्यास

'सागर लहरें और मनुष्य' प्रकाशित हुआ, जो आदिवासी मछुआरों की सामूहिक जिंदगी, समुद्र के साथ उनके संघर्ष और अभाव से गुजरते हुए जीवन की साकार अभिव्यक्ति है। 'नट' जैसे समुदाय के कबीलाई जीवन पर केंद्रित प्रसिद्ध उपन्यास 'कब तक पुकारूं' (१९५७) को अध्येताओं ने आदिवासी श्रेणी में रखा है। नृतत्व शास्त्रियों, समाज वैज्ञानिकों एवं भारतीय संविधान के प्रावधानों के तहत नट समुदाय को आदिवासी नहीं माना गया है। इसलिए इस उपन्यास को आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यास नहीं कहा जा सकता। साठोत्तरी उपन्यासों की जब चर्चा की जाती है तो कथा साहित्य में आदिवासी जीवन सीधे-सीधे दिखाई देना आरंभ होता है।

यद्यपि इससे पहले योगेंद्र नाथ सिन्हा का 'हो' आदिवासी समुदाय पर लिखा 'वन लक्ष्मी' (१९५६) सामने आता है, जिसमें उपन्यास की नायिका बुदनी ईसाई धर्मावलंबी जेफरन से प्रेम करने लगती है और इसी कारण उसे अपने समाज से सपरिवार निष्कासित कर दिया जाता है। कथाकार का कहना है कि "यो तो यहाँ अपने समाज के भीतर अविवाहित जवान लड़की स्वतंत्र होती है। लेकिन जाति की दीवार कोई नहीं तोड़ सकती है। लड़की ऐसा कोई काम नहीं कर पाती जिससे माँ-बाप को समाज से बाहर निकलना पड़े। जात और समाज के लिए ही तो मनुष्य का जीवन है, नहीं तो इस नश्वर शरीर का

मोल क्या?" बंद समाजों कि यह विडंबना है कि वे अपनी कठोर प्रथा, परंपराओं के प्रावधानों से बाहर नहीं झाँक सकते। बुदनी का प्रसंग भी ऐसे ही संकेत देता है। जेफरन से शादी करने के बाद आदिवासी पंचायत को बुदनी का परिवार निष्कासन के विरुद्ध हर्जाना अदा कर देता है, तब बुदनी को बाकायदा जेफरन की पत्नी मान लिया जाता है। यहाँ यह देखने वाली बात है कि आदिवासी घटकों के स्तर पर चल रहे इस तरह के बंधन धर्मांतरण की दशा में स्वतः ही टूट जाते हैं पूर्वोत्तर भारत इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

डॉक्टर श्यामाचरण दुबे ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'परंपरा इतिहास-बोध और संस्कृति' में यह टिप्पणी अंकित की है- "हिंदी उपन्यास की उल्लेखनीय सफलताओं के बावजूद भारत के सामाजिक यथार्थ के आंदोलन में उसकी सीमा और न्यूनताएँ चुभने वाली हैं-------। भूमिहीन खेतिहर बधुआ मजदूरों और श्रमिकों पर जो लिखा गया है वह नाकाफी है और संतोषजनक भी नहीं। आदिवासियों और दरिद्र समाज का दर्द भी अभिव्यक्त नहीं-----।" अधिकांश हिंदी उपन्यास अभी भी नगर और कस्बों के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं, बहुत कम लेखक ग्रामीण और दलित जन से तादात्म्य स्थापित कर सके हैं।"

संजीव के 'जंगल जहाँ शुरू होता है', श्रीप्रकाश मिश्र द्वारा लिखे उपन्यास 'जहाँ बांस फूलते हैं', मनमोहन पाठक के कृति 'गगन

घटा घटारानी' और तेजिंदर के 'काला पादरी' में आदिवासी जीवन के यथार्थ चित्रण का प्रयास किया गया है जयसिंह कृत 'कलावे'(१९६०) का उल्लेखनीय स्थान रहा है, जिसमें भील आदिवासियों के कलावे नामक समुदाय के अंतर्संघर्ष अभिव्यक्त हुए हैं।

बिनोवा भावे के भूदान आंदोलन के संदर्भ में यह उपन्यास कलावे समुदाय के साथ संपूर्ण गाँव का चित्रण करने में कामयाब हुआ है। सन् १९५९ में प्रकाशित जयप्रकाश भारती द्वारा 'कोहरे में खोये चाँदी के पहाड़' में देहरादून के एक अंचल में वास करने वाले पहाड़ी आदिवासियों के सांस्कृतिक पक्ष की विस्तृत अभिव्यक्ति हुई है। बहुपति परंपरा के पक्ष को इस उपन्यास में भरा गया है। इस आदिवासी समुदाय में अतिथि सत्कार को अधिक महत्व दिया जाता है। लेखक ने टिप्पणी की है कि 'अज्ञान एवं अंधविश्वास के कोहरे में इस चांदी के पहाड़ ढ़के हुए हैं और जब तक गरीबी, अंधविश्वास, अज्ञान एवं अनैतिक शोषण का अंत नहीं होगा, तब तक इस अंचल का विकास असम्भव हैं।'

राजेंद्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' में जंगल के जीवन-यथार्थ से अधिक तवज्जो फूल को प्रतीक मानकर आदिवासी जीवन के यथार्थ से परे रोमांसीकरण को दिया है। जैसे घोटुल का यथार्थ से परे चित्रण जिसमें युवक-युवतियों के संबंधों की उन्मुक्तता को भौतिक यथार्थ से परे मस्ती के रूप में चित्रित किया गया और स्त्री-पुरुष के

संबंधों की समानता एवं विवाह से पूर्व चयन के अवसर को एक तरह से नजरअंदाज कर दिया गया है। इस तरह आदिवासी जीवन के अभावों, असुविधाओं, भूख-प्यास, जीवन की कठोरता जैसे महत्वपूर्ण पक्षों को अछूता व अदृश्य रख दिया गया। आदिवासी जीवन के कथाकार को रोमांस की रंगीनियाँ दिखाई देती हैं, उनके नंगे-भूखे वदन नहीं। शानी का 'कस्तूरी' उपन्यास १९६० में प्रकाशित हुआ था। उसी उपन्यास का कथानक कमोवेश १९७१ में छपे उनके 'साँप और सीढ़ी' उपन्यास में पुनः प्रस्तुत हुआ है। 'कस्तूरी' के अंत में लिखा है कि 'टूटी हुई-सी धानमा वहीं बैठ गई, शायद लोग सच ही कहते हैं कि "मृग अपनी नाभि में छुपी हुई कस्तूरी को नहीं जानता और उसकी तलाश में जीवन भर भटकता रहता है।" 'साप और सीढ़ी' उपन्यास की अंतिम पंक्तियाँ "धीरे से चाय घर के सामने आकर धानमा ऐसी खड़ी हो गई है जैसे किसी को पुकारेगी, कोई भीतर लालटेन उठाए आकर दरवाजा खोलेगा, तब जाकर भीतर जाना होगा-------। डोली, दयाशंकर, हीरा सिंह कोई नहीं। पीछे कोलतार की सड़क अनजान बनी दमी साधे खड़ी थी- डस चुके साँप की तरह अलसाई हुई और बेहद तृप्त। दोनों उपन्यासों का समवेत स्वर इस प्रकार सामने आता है कि धानमा भले ही एक इंसानी पात्र को, किंतु अंचल की संक्रमणकालीन दशा को अभिव्यक्त करने की माध्यम बनती है और उपन्यास व्यापक फलक ग्रहण करता है।

शानी का दूसरा उपन्यास 'शाल वनों का दीप' संस्मरणात्मक कृति है। स्वयं शानी मानते हैं कि 'शाल वनों का दीप' उपन्यास नहीं है। यात्रा वर्णन भी इसे नहीं कह सकते। मध्यप्रदेश के बस्तर के घोर आदिजातीय भू-भाग अबूझमांड और वहाँ के ओरछा नामक एक गाँव के सामाजिक जीवन और उसके यथार्थ का यह एक कथात्मक चित्रण है। अंचल के नाडिया गौंड समुदाय के जीवन के विभिन्न पक्षों को इस उपन्यास में अभिव्यक्ति दी गई है, जहाँ हर्ष और विषाद दोनों स्थान पाते हैं। वर्ष १९६३ में प्रकाशित डॉ श्याम परमार की कृति 'मोरझाल' में भील आदिवासी के जीवन का व्यापक चित्रण मिलता है। कवि होने के नाते लेखक का काव्यात्मक प्रभाव इस उपन्यास में झलकता है, लेकिन यहाँ भी भील नायक-नायिका के मध्य विकसित हुए प्रणय से अधिक महत्व दिया गया है और उसका रुचि ले--लेकर रीतिकालीन किस्म का चित्रण किया गया है। निष्कर्ष यह निकलता है कि लेखक का लक्ष्य भील जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करना कम है, तथा रोमांसीकरण के सौंदर्य को उभारना अधिक।

कई विद्वान मणि मधुकर के 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास को आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यास मानते हैं। लेकिन वह वस्तुतः एक खानाबदोश समुदाय से ताल्लुक रखने वाली लोक नर्तकी पन्ना को नायिका के रूप में विकसित करते हुए केंद्र में रखकर लिखा

गया उपन्यास है। यह समुदाय राजस्थान के गाडिया-लुहारों का है, जो कहीं से आदिवासी नहीं हैं। शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' भी नटों के कबीलाई जीवन पर केंद्रित है। यह रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूं' की श्रेणी का ही उपन्यास है।

तेजिंदर का उपन्यास 'काला पादरी' सन् २००२ में प्रकाशित हुआ जो कथा साहित्य में आदिवासी जीवन की अभिव्यक्ति की एक आधिकारिक कृति कही जा सकती है। उदय प्रकाश ने इसे सामान्य औपन्यासिक कृति से हटकर अप्रत्याशित कृति कहा है, जिसमें दो संस्कृतियों की टकराहट से पैदा होने वाली जटिलताओं का खूबसूरत चित्रण हुआ है। इस उपन्यास के केंद्र में धर्मांतरण है और प्रमुख आदिवासी पात्र अपने परंपरागत धर्म को छोड़कर ईसाई बन जाता है।

वीरेंद्र जैन का 'पार' उपन्यास काफी प्रसिद्ध हुआ है और आदिवासी जीवन की पीड़ा पर केंद्रित है। राजस्थान का यह एक तरह से डूब उपन्यास के कथानक को आदिवासी जीवनी तक पहुंचाता है। राजस्थान व मध्यप्रदेश के सहरिया आदिवासी जीवन पर केंद्रित पुन्नी सिंह का 'सहाराना' उपन्यास सन् १९९९ में प्रकाशित हुआ। सहरिया आदिवासियों के शोषण और नाना प्रकार की पीढ़ियों को इस उपन्यास में अभिव्यक्ति मिली है। उपन्यास का नायक 'सोना' है जो जड़ परंपरा के विरुद्ध प्रतिरोध करता है।

श्रीप्रकाश मिश्र के 'जहाँ बांस फूलते हैं' उपन्यास में मिजोरम के आदिवासी संघर्ष की कथा का वर्णन किया गया है जो श्रीप्रकाश मिश्र के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर है। डॉ महेंद्र भटनागर ने इस उपन्यास के बारे में लिखा है कि "प्रसिद्ध उपन्यास ऐतिहासिक ना होते हुए भी इतिहास से संबंध है, तमाम घटनाचक्र इतिहास सम्मत है, उसमें कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं। एक संपूर्ण जनजाति की गाथा है, उसमें मिजो विद्रोह का क्रमिक विवरण है- किसी भी डॉक्यूमेंट्री फिल्म की तरह।" इस उपन्यास का केंद्रीय तत्व है की व्यवस्था के विरुद्ध मिजो आदिवासी हथियार उठाने से नहीं चूकते और सामंती शोषण के प्रतिनिधियों के विरुद्ध मोर्चा खोलते हैं। शायद हिंदी में पूर्वोत्तर के जीवन को गहराई से समझाने वाला यह पहला उपन्यास है। श्रीप्रकाश मिश्र का दूसरा उपन्यास 'रूप तिल्ली की कथा' मेघालय के खासी आदिवासियों की कहानी है जिसमें उन आदिवासियों को हिंदू और इसाई धर्म के ठेकेदारों द्वारा परंपरागत धार्मिक आस्थाओं को छोड़कर अपनी-अपनी ओर खींचने का प्रयास किया जाता है और इस प्रक्रिया में जो अंतर्संबंध पैदा होता है वह अंततः हिंदुओं के विरुद्ध एक प्रकार से प्रच्छन्न और फिरंगियों के प्रति जाहिरा तौर पर सशस्त्र संघर्ष के रूप में सामने आता है। यह खासी आदिवासी अपने परंपरागत धर्म के प्रति निष्ठावान बने रहते हैं। यह संघर्ष ऐतिहासिक दृष्टि से सन् १८२४ से १८४८ की अवधि में हुआ।

मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी' एक महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है जो सन् १९९१ में 'कतार' पत्रिका के वार्षिक विशेषांक में प्रकाशित और चर्चित हुई।

किसी भी भाषा के साहित्य में जब किसी विषय की अभिव्यक्ति के यथार्थ व विस्तार का मूल्यांकन किया जाता है तो उस विषय विशेष के बहुत सारे आयाम जीवन के स्तर पर चिन्हित किए जा सकते हैं। उन बहुआयामी विषय क्षेत्रों का कितना हिस्सा साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है, यह देखना महत्वपूर्ण है। उससे अधिक महत्वपूर्ण है विषय-क्षेत्रों के अधिकारिक अनुभव एवं अभिव्यक्ति की ईमानदारी का। जब हिंदी कथा साहित्य में आदिवासी जीवन के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति पर चर्चा की जाती है तो सबसे पहले हमें आदिवासी जीवन के विषय एवं उसके विस्तार में जो प्रमुख आयाम सामने आते हैं उनको देखना होगा। जीवन के विभिन्न पक्षों, जिनमें आदिवासी जनजीवन के साथ मानवेतर प्राणी जगत और प्रकृति के विभिन्न तत्व भाव-भंगिमाएँ एवं व्यवहार भी शामिल होगा। इन सब का क्रियात्मक, अंतर्संबंध ही जीवन की समग्रता का आधार बनता है। आदिवासी जीवन की तलाश जब कथा साहित्य में की जाती है तो निम्न पदों के परिप्रेक्ष्य में यह विमर्श होना चाहिए।

१- आर्थिक व सामाजिक जीवन

२- धार्मिक व मिथकीय आस्थाएँ एवं मान्यताएँ

३- मौखिक साहित्य परंपरा

४- संस्कृति जीवन शैली

५- मनोविज्ञान

६- परंपरा और इतिहास

७- बाहरी दुनिया से अंतर्संबंध

८- विकास की दशा व दिशा

९- भविष्य की चुनौतियाँ, अपेक्षाएँ स्वप्न व मॉडल

१०- चेतनाकामी नेतृत्व की माँग

११- स्त्री पुरुषों के संबंध

१२- शोषण के विभिन्न रूप एवं उसके विरुद्ध प्रतिरोध व संघर्ष

१३- कलात्मक अभिव्यक्ति

१४- परंपरागत अनुभवजन्य बहुआयामी ज्ञान।

उपरोक्त पक्षों के परिप्रेक्ष्य में सृजित तथा साहित्य की मीमांसा की जाती है तो सूचीबद्ध उपन्यासों में से प्रत्येक में कोई न कोई पक्ष निश्चित रूप से अभिव्यक्त हुआ है, यह अलग बात है कि कुछ

उपन्यासों में उस पक्ष का वास्तविक रोमांसीकरण कर दिया गया है जो निर्भर करता है, लेखक के अनुभव और दृष्टिकोण पर।

विषय की सुसंगतता गहन अनुभव व आधिकारिक अभिव्यक्ति के यथार्थ पक्ष की दृष्टि से जिन उपन्यासों की ओर ध्यान आकर्षित होता है उनमें 'कस्तूरी' 'साप और सीढ़ी' व 'शाल वनों का द्वीप'(शानी), 'काला पादरी'(तेजिंदर), 'पार'(वीरेंद्र जैन), 'सहराना'(पुन्नी सिंह), 'जहाँ बांस फूलते हैं' व 'रूपतिल्ली की कथा'(श्री प्रकाश जैन), 'गगन घटा घहरानी'(मनमोहक पाठक), 'समर शेष है'(विनोद कुमार), 'पठार का कोहरा' व 'जो इतिहास में नहीं'(राकेश कुमार सिंह), 'धार' व 'जंगल जहाँ शुरू होता है'(संजीव), 'जंगल के गीत'(पीटर पॉल एक्का), 'खुले गगन के लाल सितारे'(मधु कांकरिया), 'धूणी तपे तीर'(पीपर पॉल एक्का) (हरीराम मीणा) शामिल किये जा सकते हैं।

हिंदी भाषा के अलावा अन्य प्रांतीय भाषाओं में लिखे गए उपन्यासों की चर्चा की जाए तो महाश्वेता देवी द्वारा बंगला में लिखे गए जंगल के दावेदार, चेटिमुंडा, व उसके तीर, हजार चौरासी की माँ एवं गोपीनाथ महांती (ओडिया) के अमृत संतान, माटी-मटाल, दाना-पाणी, परजा आदि उपन्यास ही प्रमुखता से सामने आते हैं। सन् १९४२ के नगा संघर्ष पर केंद्रित वीरेंद्र भट्टाचार्य का मृत्युंजय (असमिया) उपन्यास महत्वपूर्ण है जिसमें नगा आंदोलन के विभिन्न पक्षों को अत्यंत संवेदना

के साथ अभिव्यक्त किया गया है। अंग्रेजी भाषा में आदिवासियों पर लिखा गया एक उपन्यास काफी चर्चित हुआ है जो अंग्रेजी कथाकार 'सरेल'(Darrell) ने लिखा है, जिसका शीर्षक है एन अमेरिकन इन नागालैंड।' शीर्षक से आभास होता है कि यह कोई यात्रा वृतांत होगा। वस्तुतः यह 'कोन्यांक' नगा समुदाय के जीवन से संबंधित कथा है, जो आखेटक नगा समुदाय की एक युवती का अमेरिकी प्रोफेसर से प्रेम प्रसंग से संबंधित है। इस उपन्यास में नगा समुदाय का बाहरी व्यक्तियों से संपर्क से पैदा होने वाली जटिलताओं को गहराई से उभारा गया है।

उक्त उपन्यासों में उपनिवेशवाद, सामंतवाद व वर्चस्वादी अन्य वर्गों के शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध व संघर्ष विशेष रूप से उभरकर सामने आया है। संस्कृति के विभिन्न उपांग यथा ऋतुएँ, पर्वोत्सव आदि की अभिव्यक्ति को 'स्पेस' मिला है, प्रेम प्रसंग जैसे जीवन के स्वाभाविक पक्ष भी उभर कर सामने आये हैं, रीति-रिवाज, अंध-विश्वास, भोलापन, आदि-मानसिकता, स्त्री-पुरुष संबंध, धर्मांतरण, अवसाद, बाहरी समाज से अच्छे-बुरे अंतर्संबंध आदि को भी जगह मिली है। यह सब होने के बावजूद प्रकृति व मानवेतर प्राणी जगत से आदिवासी जन के सह-अस्तित्व की गहराई, अतीत की व्याख्या, प्रजातंत्र व विकास के दावों पर क्रूर यथार्थ, निजी संपत्ति की अवधारणा का स्वरूप, शब्देतर संप्रेषण यथा स्वर व संकेतात्मक भाषा का उपयोग, परंपरागत बहुआयामी ज्ञान,

भौगोलिकता, हर्ष-विषाद, साहित्य की विभिन्न विधाओं की मौखिक परंपरा, आदिवासी के प्रति तथाकथित भारतीय मुख्य समाज का नजरिया तथा विकास व विस्थापन से जुड़े बहुत सारे ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें ईमानदार अभिव्यक्ति का अभी भी इंतजार है।

अध्याय छः

संदर्भ

१- किशनगढ़ की अहेरी संजीव प्रकाशक मीनाक्षी पुस्तक मंदिर पी•-१० नवीन शाहदरा, संस्करण-१९८१ पृ• सं•- ३२

२- उपरोक्त पृ•सं•- ३६

३- उपरोक्त पृ• सं•- ३७

४- उपरोक्त पृ• सं•- ४१

५- उपरोक्त पृ• सं•- ४९

६ - सर्कस, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• जी•-१७ जगतपुरी, दिल्ली, संस्करण-१९८४,पृ• सं•- २१

७- सावधान! नीचे आग है , संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• २/३८, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण १९८६, पृ• सं•- ८९

८- उपरोक्त पृ• सं•- ९३

९- उपरोक्त पृ• सं•- १०१

१०- धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• २/३८ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-१९९०, पृ• सं•- ४३

११- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ५३

१२- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ७१

१३- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ८१

१४- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ८७

१५- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ९१

१६- उपरोक्त पृ॰ सं॰- १२१

१७- उपरोक्त पृ॰ सं॰- १३०

१८- पॉव तले की दूब, संजीव, प्रवीण प्रकाशन- १/१०७ महरौली नई दिल्ली, प्र॰ सं॰- १९९५ पृ॰ सं॰- २७

१९- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ३१

२०- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ३६

२१- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा॰ लि॰ जी॰१७ जगतपुरी, दिल्ली, संस्करण- २०००, पृ॰ सं॰- ३९

२२- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ४१

२३- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ४३

२४- उपरोक्त पृ॰ सं॰- ६१

२५- उपरोक्त पृ• सं•- ७३

२६- उपरोक्त पृ• सं•- ८१

२७- सूत्रधार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• २/३८ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२००३, पृ• सं•- ३१

२८- उपरोक्त पृ• सं•- ३७

२९- उपरोक्त पृ• सं•- ४१

३०- आकाश चंपा, संजीव, रे माधव पब्लिकेशन्स, प्रा• लि• सी•-२२ तृतीय तल आ• डी• सी• रामनगर संस्करण २००४ पृ• सं•- १९

३१- रानी की सराय, संजीव, रे माधव पब्लिकेशन्स, प्रा• लि• सी•-२२ तृतीय तल आ• डी• सी• रामनगर संस्करण २००९ पृ• सं•- ६१

३२- उपरोक्त पृ• सं•- ६३

३३- उपरोक्त पृ• सं•- ६२

३४- उपरोक्त पृ• सं•- ६९

३५- उपरोक्त पृ• सं•- ८३

३६- गुफा का आदमी, संजीव, भारतीय ज्ञानपीठ, इन्स्टीट्यूश्जल एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली संस्करण २००६ पृ• सं•- ६१

३७- जीवन के पार, संजीव, दिशा प्रकाशन, १३८/१६ ओंकारनगर बी, त्रिनगर दिल्ली-३५, संस्करण-१९८७, पृ• सं•- ४१

३८- उपरोक्त पृ• सं•- ४९

३९- हिमरेखा, संजीव, दिशा प्रकाशन, १३८/१६ ओंकारनगर बी, त्रिनगर दिल्ली-३५, संस्करण-१९८७, पृ• सं•- १९

४०- वनलक्ष्मी, योगेंद्रनाथ सिन्हा, किताबघर, २४ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण १९९६, पृ• सं•- १०३

४१- जंगल के फुल राजेंद्र अवस्थी स्टार पब्लिकेशन नई दिल्ली संस्करण २००३, पृ• सं•- ३३

४२- कस्तूरी, शानी, वाणी प्रकाशन, २१A, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण-२००८, पृ• सं•- ४९